समाज की पशुवत प्रवृत्तियों का प्रतीक है मृत्युदंड

मानव सभ्यता का इतिहास असमान और हिंसक समाजों के मानवतावादी, समावेशी और कम हिंसक समाजों में परिवर्तन का इतिहास है। मानव समाज, तानाशाही से प्रजातंत्र की ओर अग्रसर हुआ, वह राजशाही से लोकशाही की तरफ बढ़ा।

समाज में हमेशा से अपराधियों को सज़ा देने का प्रावधान रहा है परंतु जहां प्राचीन समाजों में सज़ा का उद्देश्य प्रतिशोध लेना हुआ करता था, वहीं आधुनिक समाज, सज़ा को एक ऐसे उपकरण के रूप में देखता है, जिससे अपराधी को स्वयं को बदलने की प्रेरणा मिले और समाज के अन्य लोग अपराध करने से बचें।

नेशनल च्वाईस थ्योरी यतार्किकता चयन सिद्धांत के अनुसार, सज़ा का प्रावधान इसलिए नहीं किया जाना चाहिए क्योंकि हम अपराधियों से बदला लेना चाहते हैं बल्कि सज़ा का प्रावधान इसलिए होना चाहिए क्योंकि इससे अन्य लोग अपराध करने के प्रति हतोत्साहित होंगे, अपराध करने से डरेंगे। प्राचीन और मध्यकाल में राजाओं द्वारा जो सज़ाएं दी जाती थीं उनमें शामिल थीं आदमी को उबलते हुए पानी में फेंक देना, भूखे शेरों के सामने डाल देना, धीरे-धीरे काटकर मारना, कमर के नीचे से शरीर को दो भागों में बांटकर मरने के लिए छोड़ देना, पेट काटकर आंते बाहर निकाल लेना, सूली पर चढ़ाना, हाथी के पैरों तले कुचलवाना, पत्थरों से मारकर जान लेना, तोप के मुंह से बांधकर उड़ा देना, जिंदा जलाना, हाथ पैर काट लेना, सार्वजनिक रूप से फांसी देना, गिलोटिन से मौत के घाट उतारना और लाईन में खड़ा कर गोली मार देना। यह उन तरीकों की पूरी सूची नहीं है, जिनका इस्तेमाल प्राचीन और मध्यकाल में राज्य, अपराधियों को सज़ा देने के लिए करता था। यह केवल उनमें से कुछ तरीकों की बानगी भर है।

ये सज़ाएं उन लोगों को दी जाती थीं जो राज्य के खिलाफ विद्रोह करते थे, राज्य के धर्म के अलावा किसी और धर्म को मानते थे, शासक वर्ग से मतभेद रखते थे या जिन्हें लीक पर चलना मंजूर न था। गेलिलियो ने जब यह कहा कि पृथ्वी नहीं, बल्कि सूर्य ब्रह्माण्ड का केंद्र है तो चर्च का कहर उन पर टूट पड़ा। अंततः उन्हें यह कहना पड़ा कि उनकी खोज गलत थी और चर्च का यह सिद्धांत ठीक था कि ब्रह्मण्ड, पृथ्वी, केंद्रित है।

सन् 1820 में ब्रिटेन में 160 ऐसे अपराध थे जिनके लिए मौत की सज़ा का प्रावधान था। इनमें शामिल थे दुकानों से सामान चुराना, छोटी-मोटी चोरी, खानाबदोशों के साथ एक महीने से अधिक समय बिताना आदि। ब्रिटेन में एक समय 220 अपराधों की सज़ा मृत्युदंड थी। मौत की सज़ा जिन अपराधों के लिए दी जाती थी उनमें से कई ऐसे थे जो धनी लोगों की संपत्ति की सुरक्षा करने के लिए बनाए गए थे। ऐसा बताया जाता है कि हैनरी अष्टम ने 72,000 लोगों को मौत की सज़ा से दंडित किया था। सन् 1810 में हाउस ऑफकामन्स में मृत्युदंड के विषय पर भाषण देते हुए सर सैम्युअल रोमिल्ली ने कहा था, इस धरती पर कोई ऐसा देश नहीं है जिसमें इतने सारे अपराध मौत की सज़ा से दंडनीय हों, जितने कि इंग्लैण्ड में।

19वीं सदी में रोमन गणराज्य, वेनेजुएला, सेनमेरिनो और पुर्तगाल ने मौत की सज़ा का प्रावधान समाप्त कर दिया। रोमन गणराज्य ने 1849 में यह प्रतिबंध लगाया, वेनेजुएला ने 1854 में, सेनमेरिनो ने 1865 में और पुर्तगाल ने 1867 में। द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद, सारी दुनिया में व्यापक वैचारिक परिवर्तन आया। वर्गीय ऊँचनीच कम हुई और नाज़ी जर्मनी में हुए कत्लेआम ने लोगों को अंदर तक हिला दिया और नस्लीय भेदभाव के विद्रूप चेहरे से दुनिया को परिचित करवाया। सन् 1948 में संयुक्त राष्ट्र संघ ने मानवाधिकारों का सार्वभौम घोषणा पत्र जारी किया और इसे सन् 1950 में ब्रिटेन द्वारा स्वीकार कर लिया गया। ब्रिटेन में सन् 1964 के बाद से किसी व्यक्ति को मृत्यु दंड नहीं दिया गया। सन् 1965 में प्रधानमंत्री हेरोल्ड विल्सन की लेबर पार्टी की सरकार ने मृत्यु दंड की व्यवस्था को पांच साल के लिए निलंबित कर दिया। सन् 1969 में हाउस ऑफ कामन्स ने मृत्यु दंड के प्रावधान को ही खत्म कर दिया। सन् 1999 के 10 दिसंबर को अंतर्राष्ट्रीय मानवाधिकार दिवस के अवसर पर इंग्लैंड ने नागरिक व राजनैतिक अधिकारों पर अंतर्राष्ट्रीय समझौते के द्वितीय ऐच्छिक प्रोटोकाल पर दस्तखत कर दिए। इसके साथ ही, ब्रिटेन में मृत्यु दंड हमेशा के लिए समाप्त हो गया।

इस तरह, हम यह देख सकते हैं कि प्रजातंत्र और प्रजातांत्रिक संस्थाओं के मजबूत होते जाने के साथ ही, असहमति और मतभेदों को स्वीकार करने, सहने और उनका सम्मान करने की प्रवृत्ति बढ़ी। इस तथ्य को स्वीकार किया जाने लगा कि मानव जीवन अत्यंत मूल्यवान व पवित्र है और किसी समाज या राज्य को यह हक नहीं है कि वह किसी मनुष्य की जान ले। जैसा कि गांधीजी ने कहा थाए आंख के बदले आंख का सिद्धांत पूरी दुनिया को अंधा बना देगा। यह माना जाने लगा कि सामूहिक सामाजिक चेतना को खून का प्यासा नहीं होना चाहिए। इस संभावना को भी समुचित महत्व दिया जाने लगा कि कोई भी न्यायालय या सरकार, किसी निर्दोष व्यक्ति को भी सज़ा दे सकती है। अन्य सज़ाओं के मामले मेंए अगर बाद में संबंधित व्यक्ति निर्दोष साबित हो जाता हैए तो उसे जेल से रिहा किया जा सकता है परंतु मृत्यु दंड के मामले में गलती सुधारने की गुंजाईश नहीं है।

20वीं सदी में, आस्ट्रेलिया ने 1973 में मृत्यु दंड का प्रावधान समाप्त कर दिया। केनेडा ने 1976 और फ्रांस ने 1981 में मृत्यु दंड समाप्त कर दिया। सन् 1977 में संयुक्त राष्ट्र संघ की सामान्य सभा ने एक औपचारिक प्रस्ताव पारित किया जिसमें यह कहा गया था कि मृत्यु दंड के उन्मूलन की वांछनीयता के मद्देनजर यह बेहतर होगा कि उन अपराधों, जिनके लिए मृत्यु दंड दिया जा सकता है, की सूची उत्तरोत्तर छोटी की जाए।

संयुक्त राष्ट्र संघ की सामान्य सभा की द्वितीय समिति ने 21 नवंबर 2012 को पारित अपने चौथे प्रस्ताव में कहा कि मृत्यु दंड की व्यवस्था को समाप्त करने के उद्देश्य से, उसके इस्तेमाल पर प्रतिबंध लगाया जाए। इस प्रस्ताव को 91 सदस्य राष्ट्रों ने प्रायोजित किया था और इसके पक्ष में 110 और विरोध में 39 मत पड़े। छत्तीस देशों ने मतदान में भाग नहीं लिया। भारत ने प्रस्ताव के विरोध में मत दिया। दुनिया धीरे-धीरे मृत्यु दंड के उन्मूलन या उसके इस्तेमाल पर रोक की ओर बढ़ रही है। दुनिया के दो तिहाई देशों में या तो मृत्यु दंड खत्म किया जा चुका है या उस पर प्रतिबंध है। अर्जेन्टीना, ब्राजील, कोलम्बिया, कोस्टारिका, इक्वाडोर, मैक्सिको, पनामा, पेरू, उरूग्वे व वेनेजुएला सहित अधिकांश लातिन अमरीकी देशों में मृत्यु दंड समाप्त कर दिया गया है। यूरोप में बेल्जियम, डेनमार्क, जर्मनी, इटली, नीदरलैंड, नार्वे, स्वीडन, स्विटज़रलैंड और आईसलैंड में मृत्यु दंड नहीं दिया जाता। आस्ट्रेलिया और अमरीका के कई राज्यों में भी इस पर प्रतिबंध लगाया जा चुका है। मृत्यु दंड को मानवीय गरिमा के खिलाफ माना जाता है।

परंतु दुनिया की 60 प्रतिशत आबादी उन देशों में रहती है, जिनकी कानून की पुस्तकों में अब भी मृत्यु दंड का प्रावधान है। चीन, भारत, अमरीका और इण्डोनिशया जो कि आबादी की दृष्टि से दुनिया के चार सबसे बड़े देश हैं में मृत्यु दंड की व्यवस्था कायम है। पूरी दुनिया में 97 देशों में मृत्यु दंड समाप्त कर दिया गया है, 58 देशों में मृत्यु दंड दिया जाता है और बाकी देशों में कम से कम पिछले दस सालों में या तो किसी को मौत की सज़ा दी ही नहीं गई है या केवल अपवादात्मक परिस्थितियों जैसे युद्धकाल में दी गई है। यूरोपियन यूनियन के मानवाधिकार घोषणापत्र का अनुच्छेद दो, मृत्यु दंड को प्रतिबंधित करता है।

इस बात के कोई प्रमाण उपलब्ध नहीं हैं कि किसी देश में मृत्यु दंड समाप्त कर देने के बाद वहां अपराधों में वृद्धि हुई हो। ग्रीस में डकैती के लिए मौत की सज़ा का प्रावधान समाप्त करने के बाद, डकैती की घटनाओं में कमी आई। कनाडा में यही बलात्कार के मामलों में हुआ। इंग्लैण्ड में 1957 के होमीसाइड अधिनियम के तहत जिन अपराधों के लिए मृत्यु दंड का प्रावधान समाप्त किया गया था, उनमें इस अधिनियम के लागू होने के बाद कोई वृद्धि नहीं हुई।

सन् 2011 में दुनिया के 21 देशों में एक या उससे अधिक व्यक्तियों को मौत की सज़ा दी गई। दस साल पहले यह संख्या 31 थी। चीन में सबसे ज्यादा लोगों को मौत की सज़ा दी गई। चीन ने हाल में कुछ आर्थिक अपराधों के लिए मृत्यु दंड के प्रावधान को समाप्त कर दिया और मृत्यु दंड के सभी मामलों की उच्चतम न्यायालय द्वारा अनिवार्य रूप से समीक्षा किए जाने की व्यवस्था पुनः लागू कर दी। यद्यपि चीन, आधिकारिक रूप से यह नहीं बताता कि वहां कितने लोगों को मौत की सज़ा दी गई परंतु अध्ययनों से यह पता चलता है कि वहां लगभग 4,000 लोगों को मौत की सज़ा से दंडित किया गया। सन् 2011 में ईरान में 360 लोगों को राज्य द्वारा मौत के घाट उतारा गया। सऊदी अरब में 82 को, ईराक में 68, अमरीका में 43, येमेन में 41, उत्तर कोरिया में 30, सोमालिया में 10, सूडान में 7 और बांग्लादेश व वियतनाम में 5-5। भारत में धनंजय चटर्जी को 2004 में फांसी पर चढ़ाया गया, अज़मल कसाब को 21 नवंबर 2012 को, अफज़ल गुरू को 9 फरवरी 2013 को और याकूब मेमन को 30 जुलाई 2015 को।

कुछ देश आतंकवाद, ड्रग्स और समलैंगिकता से जुड़े अपराधों के लिए मौत की सज़ा का प्रावधान कर रहे हैं। दुनिया के लगभग 32 देशों ने ड्रग्स से जुड़े अपराधों के लिए मौत की सज़ा का प्रावधान किया है और जिन लोगों को मौत की सज़ा दी जाती है, उनमें से अधिकांश ड्रग्स से संबंधित अपराधों के दोषी होते हैं। लाईबेरियाएयुगांडा और कुछ अन्य देशों में समलैंगिकता के लिए मौत की सज़ा का प्रावधान है। सीरिया ने दिसंबर 2011 में आतंकवादियों को हथियार मुहैया कराने को मौत की सज़ा से दंडनीय अपराध घोषित कर दिया। भारत, बांग्लादेश और नाइजीरिया ने नए कानून बनाकर आतंकी हमलों के लिए दोषी पाए जाने वालों के लिए मौत की सज़ा का प्रावधान किया है। भारतीय अदालतें श्रेयरेस्ट ऑफ रेयर यदुर्लभ में दुर्लभतम अपराधों के लिए ही मौत की सज़ा सुनाती हैं।

जो लोग मौत की सज़ा के प्रावधान को बनाए रखना चाहते हैं, उनके पास अपने तर्क हैं और जो इसका उन्मूलन चाहते हैं, उनके पास अपने। परंतु मोटे तौर पर, मौत की सज़ा के पक्षधर, दक्षिणपंथी राष्ट्रवादी हैं जो विचारधारा के स्तर पर एकाधिकारवादी राज्य की स्थापना के समर्थक हैं और सामाजिक पदानुक्रम को बनाए रखना चाहते हैं। अभियोजक, जांचकर्ता व आपराधिक न्याय व्यवस्था के अन्य पुर्जे भी मौत की सज़ा को बनाए रखने के पक्षधर हैं क्योंकि उन्हें ऐसा लगता है कि इससे अन्य लोग अपराध करने के पहले दस बार सोचेंगे। परंतु हम यह कैसे भूल सकते हैं कि अज़मल कसाब की फांसी ने आतंकवादियों को 27 जुलाई 2015 को पंजाब के गुरूदासपुर में पुलिस स्टेशन पर हमला करने से नहीं रोका। इस हमले में एसपी सहित चार पुलिसकर्मी व तीन नागरिक मारे गए। सुरक्षाबलों ने आतंकवादियों को भी मार गिराया।

मृत्यु दंड की व्यवस्था को समाप्त करने के पक्षधर वे हैं जो अधिक मानवीय समाज का निर्माण करना चाहते हैं और जो समानता व सामाजिक न्याय के मूल्यों के प्रति प्रतिबद्ध हैं। उनका तर्क यह है कि समाज में जैसे-जैसे असमानता और अन्याय बढ़ेगा, अपराध भी बढ़ेंगे। और अपराधों में यह वृद्धि कड़ी से कड़ी सज़ा के प्रावधान के बाद भी होती रहेगी। जिस व्यक्ति को समाज का एक तबका क्रूर अपराधी मानता है, वह किसी दूसरे तबके लिए न्याय के लिए लड़ने वाला नायक हो सकता है। उसे जितनी क्रूर सज़ा दी जाएगी, वह उतना ही बड़ा शहीद बन जाएगा और उसके नक्षेकदम पर अन्य लोग चलेंगे। स्पष्टतः ए क्रूर सज़ाएं देने से अपराध रूकने वाले नहीं हैं। अपराध तब रूकेंगे जब हम एक न्यायपूर्ण और समतावादी समाज की स्थापना करें, जिसमें अपराध करने वाले के प्रति भी सहानुभूति और करूणा का भाव हो और अपराधी को सुधारना, जिसका लक्ष्य हो। अपराधों को रोकने में क्रूर सज़ाओं की तुलना में एक सुधरा हुआ अपराधी अधिक सक्षम होगा।

यहां यह भी महत्वपूर्ण है कि जो लोग मौत की सज़ा पाते हैं उनमें से अधिकांश समाज के हाशिए पर पड़े तबकों के सदस्य होते हैं गरीब, नस्लीय व धार्मिक अल्पसंख्यक और नीची जातियां। उदाहरणार्थ अमरीका में जिन लोगों को मौत की सज़ा सुनाई जा चुकी है उनमें से 41 प्रतिशत और जिन लोगों के मृत्यु दंड पर अमल हो गया है, उनमें से 34 प्रतिशत अफ्रीकी, अमरीकी हैं, यद्यपि वे अमरीका की आबादी का मात्र 12 प्रतिशत हैं। जहां तक अज़मल कसाब का प्रश्न है, उसकी फांसी को लेकर कोई विवाद नहीं था। अफज़ल गुरू के मामले में उच्चतम न्यायालय ने कहा कि मौत की सज़ा राष्ट्र की संयुक्त अंर्तात्मा को संतुष्ट करेगी। नरोदा पाटिया गुजरात के मामले में सत्र न्यायालय की न्यायाधीश ज्योत्सना यागनिक ने बाबू बजरंगी को मौत की सज़ा नहीं सुनाई। बाबू बजरंगी ने कौसर बानो के गर्भ को चीरकर उसके अजन्मे बच्चे को त्रिशूल की नोंक पर फंसाया था। कोई भी सामान्य आदमी यही कहेगा कि यह क्रुरता का दुर्लभ में दुर्लभतम उदाहरण है। यागनिक ने अपने निर्णय में कहा कि वे बाबू बजरंगी को मौत की सज़ा इसलिए नहीं दे रही हैं क्योंकि वह मानवीय गरिमा के खिलाफ है। कुल मिलाकर, मौत की सज़ा या किसी व्यक्ति की कानून के नाम पर जान लेना, बदले की कार्यवाही के अतिरिक्त कुछ नहीं है। यह समाज की हिंसक, पशुवत प्रवृत्तियों का प्रकटीकरण है। कसाब को फांसी दिए जाने के बाद आम लोगों ने टीवी पर जिस तरह की प्रतिक्रियांए दीं थीं, उन्हें देख, सुनकर कोई भी यह समझ सकता था कि ये सभ्य समाज की भाषा नहीं थी। फेडरेशन ऑफहिंदू आर्गनाईजेशन्स ने भारत के तत्कालीन राष्ट्रपति एपीजे अब्दुल कलाम से यह अनुरोध किया था कि अफज़ल गुरू को दी गई सज़ा में यह संशोधन किया जाए कि उसका दाहिना हाथ और बांया पैर काट दिया जाए और उसकी एक आंख निकाल ली जाए और उसके बाद इस हालत में उसे पूरे भारत में घूमने दिया जाए ताकि इस देश में कोई आतंकवादी बनने की हिम्मत न करे।

फेडरेशन चाहती थी कि राष्ट्रपति अपनी देशभक्ति साबित करने के लिए अफज़ल गुरू की सज़ा में ये परिवर्तन करें। इस तरह की क्रूर और पशुवत प्रवृत्तियों से यह दुनिया जितनी जल्दी मुक्त हो उतना बेहतर होगा।

-इरफान इंजीनियर

गतांक की चीर-फ़ाड़

मज़दूर मोर्चा के 1-15 अगस्त 2015 के अंक में समसामयिक मुद्दों पर अनेक महत्वपूर्ण लेख पढने को मिले। 'याकूब मेमन को फ़ांसी! और बाल ठाकरे को भारत रत्न?' तथा 'साम्प्रदायिकता जैसे गंभीर मसलों का हल' लेखों में 1993 मुंबई बम कांड के असली अपराधी टाइगर मेमन और मुंबई बम धमाकों से एक माह पहले शिव सेना प्रमुख बाल ठाकरे की भड़काऊ अगवाई में सैंकड़ों मुसलमानों को कत्ल किये जाने के संदर्भ में उचित विश्लेषण किया गया है।

मुसलमानों को कत्ल करने की घटना की जांच के लिये गठित श्री कृष्ण आयोग ने बाल ठाकरे सहित कई हिंदुत्ववादियों व पुलिस वालों को दोषी ठहराया था, परंतु नो तो उनके विरुद्ध कोई कार्यवाही की गई और ना ही इस जांच रिपोर्ट पर कोई कार्यवाही हुई। बालठाकरे की मृत्यु के बाद राष्ट्रीय झंडे को झुकाकर ठाकरे को सम्मान देने की कोशिश की गई जो सत्ताधारियों द्वारा भारतीय संविधान का मजाक था।

मुंबई बम कांड के मामले में उच्चतम न्यायालय ने 11 फ़ांसी की सज़ा पाए अपराधियों में से 10 की सज़ा को आजीवन कारावास में बदल दी थी और न्यायालय का तर्क था कि फ़ांसी की सज़ा मुख्य षड्यंत्रकारियों को ही मिलनी चाहिए। मुख्य षड्यंत्रकारी आतंकवादी टाइगर मेमन और दाऊद एब्राहीम थे। जाहिर है कि न्यायालय ने टाइगर मेमन के भाई याकूब मेमन को भी षड्यंत्रकारी समझ लिया होगा, जिससे अनेक बुद्धिजीवी व भूतपूर्व जज सहमत नहीं है। उच्चतम न्यायालय के 29 जुलाई की सायं 4 बजे और जुलाई की प्रातः 5 बजे के आदेशों ने देश की न्याय प्रक्रिया, उच्चतम न्यायालय व केन्द्रीय सरकार की विश्वसनीयता पर सवाल खड़ा कर दिया है। केन्द्र व कुछ राज्य सरकारों के रवैये से मुस्लिम समाज को लगने लगा है कि आतंकी हमले के दोषियों को सज़ा दिलाने के मामले में हमारे देश की न्यायायिक प्रक्रिया निष्पक्ष नहीं है।

क्या राजीव गांधी व बेअंत सिंह के हत्यारों तथा बाल ठाकरे का गुनाह याकूब मेनन व अफजल गुरू से किसी भी मामले में रत्ती भर कम है? यदि नहीं तो पंजाब, तमिलनाडु व महाराष्ट्र की सरकारों को अपनी पसंद के आतंकवादियों को पचाने और उन्हें नायक का दर्ज़ा देने की इजाजत कैसे दी जा रही है। आतंक के मामले में सरकार और अदालत दोनों अधिक सक्रिय नहीं है। ओवैसी और सैयद अली शाह गिलानी के सवालों से मूंह नहीं मोड़ा जा सकता कि क्यों केवल मुसलमानों को ही फांसी दी जा रही है? विचारणीय है कि अजमेर शरीफ़, मालेगांव, समझौता एक्सप्रेस धमाकों औरा माया कोडनानी व बाबू बजरंगी मामलों में सरकार और अदालतें क्या कर रही है?

अल्पसंख्य समुदाय विशेषकर मुस्लिम समाज और संवेदनशील लोगों के बीच यह धारणा मजबूत हो रही है कि हमारा सिस्टम अपना धार्मिक संतुलन तेज़ी से खो रहा है। कई बहुचर्चित मुकदमों में राज्य सरकारों की तरफ़ से सबूत और गवाह पेश करने में सुनियोजित ढंग से चालाकी की जाती है तथा गवाहों पर हर तरह का दबाव व लालच देकर उनको बयान से पलटने को मजबूर किया जाता है जिससे कि बहुसंख्यक समुदाय से सम्बन्धित दोषी सज़ा से बच जाए और यदि वे अल्पसंख्यक समुदाय विशेषकर मुस्लिम समुदाय से हों तो उनके बचने की कोई संभावना ही न रहे। संसद में केन्द्रीय गृहमंत्री राजनाथ सिंह के बयान से उक्त दुर्भाग्यपूर्ण प्रक्रिया को और अधिक सक्रिय कर दिया है। स्पष्ट है कि आगामी बिहार विधान सभा चुनाव के संदर्भ में हिन्दू वोटों के ध्रुवीकरण के लिए यह सोचा समझा बयान है।

राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ के सरसंघचालक एम.एस. गोलवरकर ने अपनी पुस्तक ''वी'' हम में आर एस एस का राजनैतिक दर्शन सपष्ट किया है जिसमें फ़ासीवाद के सिद्धांतों की प्रतिध्वनि स्पष्ट झलकती है। संघ का नारा ''हिन्दुस्तान हिंदुओं का'' था। गोलवरकर इतना भी मानने को तैयार नहीं थे कि अल्पसंख्यक समुदायों को अपना अलग सांस्कृतिक अस्तित्व बनाए रखने का अधिकार है। उनके अनुसार यदि हिंदुओं की भूमि पर अल्पसंख्यक रहना चाहते हैं तो उन्हें हिंदू संस्कृति और भाषा अपनानी चाहिए। वे हिन्दू जो संघ की विचारधारा से इत्तफ़ाक नहीं रखते उनको तथा अल्पसंख्यकों विशेषकर मुसलमानों को गोलवरकर शत्रु समझते थे। इसके विपरीत स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध उन्होंने कोई योगदान नहीं दिया। स्पष्ट है कि वे अंग्रेजों को अपना शत्रु नहीं समझते थे।

मज़दूर मोर्चा के 16-31 जुलाई तथा 1-15 अगस्त 2015 के अंकों में संघ द्वारा हिन्दू धर्म के सबसे बड़े ठेकेदार होने का दावा करने और गोलवरकर के ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध लड़ाई न लड़ने संबंधित विचारों का पर्दाफ़ाश करने का सराहनीय कार्य किया गया है। मोदी सरकार बनने के बाद पूरा संघ परिवार गोलवरकर के विचारों को लागू करने का खुलकर हर संभव प्रयास कर रहे हैं।

समाज में व्याप्त आर्थिक असमानता, बेरोजगारी, गरीबी, मानसिक व सामाजिक तनाव तथा अन्धविश्वास के कारण पाखंडी बाबाओं का जमावड़ा दिन-प्रतिदिन बढता जा रहा है। इन्हीं कारणों से ये बाबा भगवान व धनी बनने में देरी नहीं लगाते। लेख 'अन्धविश्वास की खाद से बढती बाबाओं की फसल' में इसका उचित विवेचन किया गया है। जब किसी ढोंगी बाबा की पोल खुलती है ओर उसके विरुद्ध कार्यवाही की जाती है तो पूरा संघ परिवार उसके बचाव में खड़ा हो जाता है और तर्क दिया जाता है कि यह हिंदू संतों को बदनाम करने का षडयंत्र है जिसका ज्वलंत उदाहरण है बलात्कार व यौन अपराधों का अपराधी 'संत' आसाराम। गौरतलब है कि राजस्थान के जोधपुर ज़िले में तीसरी कक्षा की शिक्षा और सामान्य ज्ञान की पाठ्यपुस्तक 'नया उजाला' में बलात्कार के आरोपी आसाराम को संत के रूप में दिखाया गया है इतना ही नहीं उसे गुरू नानक, महात्मा बुद्ध, स्वामी महावीर, स्वामी विवेकानंद, मदर टेरेसा, मीरा बाई, राम-कृष्ण परमहंस आदि के साथ जगह दी गई है। इस पुस्तक की आपूर्ति दिल्ली स्थित प्रकाशक गुरुकल एजुकेशन बुक ने की है।

केन्द्र में मोदी सरकार बनने के बाद साल 2015 के शुरूआती 6 महीने में पिछले साल के मुकाबले साम्प्रदायिक हिंसा की घटनाएं बढी है। गृह मंत्रालय के आंकड़ों के मुताबिक इन साम्प्रदायिक हिंसक घटनाओं में काफ़ी संख्या में लोगों की मृत्यु हुई है व घायलों की संख्या तो और भी ज़्यादा है। साम्प्रदायिकता की रोकथाम के लिये साम्प्रदायिकता विरोधी तथा प्रगतिशील लोग़ों को साम्प्रदायिकता के विरुद्ध जनता को जागरूक करके एकजुट होकर साम्प्रदायिक ताकतों के विरुद्ध संघर्ष करना होगा। स्तम्भ 'तुर्की-ब-तुर्की' व 'ऐसे अनगिनत भाषण हैं मोदी के!!' टिप्पणी द्वारा मोदी के भाषणों व उनकी कार्यशैली पर सटीक व्यंग्य किया गया है। अन्य प्रकाशित लेख भी उच्च कोटि के तथा प्रशंसनीय है।

-प्रो. जुगल किशोर गुप्ता